शोध मंथन Vol. XII No.III July-Sep. 2021 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

कला वरासत

डॉ० अनिता रानी
एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत (सितार) विभाग
श्रीमती बी० डी० जैन गर्ल्स (पी० जी०) कॉलेज
आगरा
ईमेलः *dr.anita80@gmail.com*

प्राप्तिः 28.08.2021
स्वीकृतः 10.09.2021

सारांश

आज जो स्थिति भारत–भू की है, इस भूमि पर रहने वाले भारतीयों की है, उनकी सांस्कृतिक–थाती, उनकी सोच और मानसिकता की है वह बड़ी ही दयनीय, लज्जाजनक, अतिशय भयावह, घिनौनी और अमान्वीय है। इसका मूल कारण है आंग्ल–शासन में हमारी पारम्परिक शिक्षा पद्धति का विनाश। : :कला और संस्कृति का इतना विरूपण कि हम स्वतंत्र हो जाने के पश्चात भी अपने अस्तित्व को पहचान नहीं पा रहे है। अब समय आ गया है जब भारत–भूमि को सांस्कृतिक–स्वतंत्रता दिलाने के लिए युवा–पीढ़ी को क्रांति–घोश करना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है अपने को पहचानना, अपने गौरवपूर्ण ऐतिहासिक पष्ठों का पाठन, अपनी स्वस्थ परम्पराओं को ''आधुनिकता'' में ढालना। मेरा आशय है उस ''आधुनिकता'' से जो भारत–भू की सोंधी गंध से सनी हो अर्थात ''भारतीय आधुनिकता''।

अंत में निश्कर्श स्वरुप यह कह सकते है कि हम मैकाले की भूल–भुलैयों से निकलकर यदि अपने प्राचीन ग्रंथों का जिनमें महाकाव्य, पुराण और लौकिक साहित्य का स्थान सर्वोपरि है, अध्ययन करें तो पायेंगे कि उनमें कला–संबंधी इतना प्रचुर ज्ञान है कि विश्व कला–साहित्य भी उसकी तुलना में नगण्य है। यह बकवर्षत्ति या व्याजोक्ति नहीं, कटु सत्य है।

हमारी सांस्कृतिक और एतिहासिक परंपरा बहुत ही समष्द्ध और उदार रही है, हममें कौलीन्य–गर्व रहा है, आत्ममर्यादा को समस्त दुनियायी सुख–सुविधाओं से श्रेश्ठ समझा है और जीवन के किसी भी क्षेत्र में असुंदर को सेहन नहीं किया है। अरे ! ''जो जाति सुन्दर की रक्षा और सम्मान करना नहीं जानती वह विलासी भले ही हो ले पर कलात्मक विलास उसके भाग्य में बदा नहीं होता।''

मूल बिन्दु

कला, संस्कृति, आधुनिकता, परंपरा, संस्कार

आज जो स्थिति भारत–भू की है, इस भूमि पर रहने वाले भारतीयों की है, उनकी सांस्कृतिक–थाती, उनकी सोच और मानसिकता की है वह बड़ी ही दयनीय, लज्जाजनक, अतिशय भयावह, घिनौनी और अमान्वीय है। इसका मूल कारण है आंग्ल–शासन में हमारी पारम्परिक शिक्षा पद्धति का विनाश। : :कला और संस्कृति का इतना विरूपण कि हम स्वतंत्र हो जाने के पश्चात भी अपने अस्तित्व को पहचान नहीं पा रहे है। अब समय आ गया है जब भारत–भूमि को सांस्कृतिक–स्वतंत्रता

दिलाने के लिए युवा–पीढ़ी को क्रांति–घोश करना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है अपने को पहचानना, अपने गौरवपूर्ण ऐतिहासिक पृश्ठों का पाठन, अपनी स्वस्थ परम्पराओं को ''आधुनिकता'' में ढालना। मेरा आशय है उस ''आधुनिकता'' से जो भारत–भू की सोंधी गंध से सनी हो अर्थात ''भारतीय आधुनिकता''।[1]

वस्तुतः आधुनिकता है क्या ? इस शब्दार्थ पर विचार करें तो ''अधुना'' या इस समय जो कुछ है वह आधुनिकता है, पर आधुनिक का यही अर्थ नहीं है। हम बराबर देख रहे है कि कुछ बातें इस समय भी ऐसी है जो आधुनिक नहीं है, पुरातन हैं या मध्यकालीन हैं। सभी भावों के मूल में कुछ पुराने संस्कार और नए अनुभव होते है। वैसे भी परंपरा से आधुनिकता का वैसा विरोध नहीं होता। दोनों ही गतिशील प्रक्रियाएं हैं। दोनों में अन्तर केवल यह है कि परंपरा यात्रा के मध्य पड़ा हुआ अंतिम चरण है, जबकि आधुनिकता आगे बढ़ा हुआ गतिशील कदम है।

आधुनिक अपने आप में कोई मूल्य नहीं है। मनुश्य ने अनुभवों द्वारा जिन मानवीय मूल्यों को उपलब्ध किया है उन्हें नए सन्दर्भों में देखने की दृश्टि आधुनिकता है। यह एक गतिशील प्रक्रिया है। कोई भी आधुनिक विचार आसमान से नहीं उत्पन्न होता है। सबकी जड़ परंपरा में गहराई तक हुई है। सुन्दर से सुन्दर फूल यह दावा नहीं कर सकता कि वह वष्क्ष से भिन्न होने के कारण उससे एकदम असंपष्क्त है। कोई भी वष्क्ष दावा नहीं कर सकता कि वह मिट्टी से भिन्न होने के कारण उससे एकदम अलग है। इसी प्रकार कोई भी आधुनिक विचार यह दावा नहीं कर सकता कि वह परंपरा से कटा हुआ है। कार्य कारण के रूप में आकार आधेय के रूप में परंपरा की एक अविच्छेदय श्रृंखला अतीत में बहुत गहराई तक गयी हुई है।

परंपरा आधुनिकता को आधार देती है, उसे शुश्क और नीरस बुद्धि–विकास बनने से बचाती है। उसके प्रयासों को अर्थ देती है, उसे असंयत और विशृंखल उन्माद से बचाती है। परंपरा और आधुनिकता ये दोनों परस्पर विरोधी नहीं, परस्पर पूरक हैं।[0]

और आज हमने परंपरा को त्याग दिया है और पाश्चात्य ''आधुनिकता'' को अपना लिया है। हम अपनी भूमि से उखड़े हुए ''आधुनिक'' है। इसीलिए हमारा अतीत कही खो गया है, उसे पुनः पाना है। लम्बी दासता से मुक्ति तो पाली है, परन्तु अभी मानसिक दासता से मुक्ति पाना शेश है। और यह तब संभव है जब मैकाले की आंग्ल शिक्षा को त्याग कर हम ''तुरियावस्था'' में पहुंचने की चेश्टा करेंगे। हमे आश्चर्य नहीं होना चाहिए चेतना, स्वप्न, सुशुप्ति, तुरीय, तुर्यातीत, भगवत्चेतना एवं ब्रह्मचेतना के इन सोपानों को पार कर जब हम उस चरम तत्व को पा लेने का पुरुशार्थ करेंगे जो परमतपस्वी हनुमान ने किया और परमतत्व में लीन हो गए। 2 निश्चित ही तब हमारे प्रयास, हमारा पुरुशार्थ ही हमे सही दिशा दे पायेगा। आज देश और समाज के नेतृत्व पर आस्था रखना व्यर्थ ही सिद्ध होगा, क्योंकि ये नेतृत्व गौरांगों के बीजित काले अंग्रेजों के हाथ में है। इसलिए इनके द्वारा आज तक भृष्ट इतिहास का शोधन नहीं हो पाया। मातृ भाशा को उसका गौरवपूर्ण स्थान नहीं मिल पाया फिर भी सम्पूर्ण भारतीय–जन क्षोभ, आचरण और भृश्ट मानसिकता के लिए ही स्वत्रंत्रता के ''भ्रम'' में जी रहा है।

''इस समय देश की जो मानसिकता है उसके बीज अंग्रेजी इतिहासकारों ने जो भारतीय इतिहास में विकृतियां उत्पन्न की उनका परिणाम है। ये विकृतियां देश के स्वतंत्रता के तीन दसकों के बाद भी शालेय पुस्तकों में विद्यमान है, यह दुःख की बात है।''

अब हमे जान लेना चाहिए कि ये आंग्ल विद्यालय हमारे शोशक हैं। इस शिक्षा ने ही हमे मानसिक दास बना रखा है। हमारी पारम्परिक शिक्षा व्यवस्था हमें पुनः चाहिए। हमारा वैदिक साहित्य, पौराणिक साहित्य और लौकिक साहित्य इतना स्वस्थ और सम्पन्न अथाह–ज्ञान का भण्डार है जिसके कुछ अंश ही हमे विश्व के सिद्धों में परमसिद्ध का पद दिला सकते है।

कुछ उदाहरण लेः – चित्रकला के उदाहरण प्रस्तुत करने से पूर्व बता देना उचित होगा कि ''चित्र पद का अर्थ एकमात्र आलेख्य नहीं है। स्वापत्य कौशल की दृश्टि से चित्र का पारिभाशिक एवं शास्त्रीय अर्थ प्रतिमा है। इसीलिए पुराणों में (देखिये – विश्णु धर्मोत्तर पुराण), आगमों में (देखिये– कामिकागम) तथा अन्य दक्षिणात्य शिल्पग्रंथों जैसे मानसारु, मयमंत आदि। में सभी में चित्र अर्थात प्रतिमा के निर्माण में तीन आधार–भौतिक आकासनुरूप बताए गए हैं –

1. चित्र पूर्ण गोलाकार मूर्तिशिल्प
2. अर्धचित्र दीवार से लगा, सम्मुख दिखता मूर्तिशिल्प
3. चित्राभास भीतों पर या अन्य आधारों पर रेखारंग से चित्रित

वाल्मीकि रामायण सेः– कला कोई सस्ता विनोद या मनोरंजन का साधन न मानी जाकर एक सात्विक अनुश्ठान समझी जाती थी। उसके सेवन के लिए पर्याप्त साधना एवं एकाग्रता अपेक्षित थी। कलाकारों द्वारा अपनी इश्ट प्राप्ति के लिए भक्ति और योग के साधन–द्वारा का आश्रय लिया जाता था। कृ तूलिका या लेखनी उठाने से पूर्व कलाकार या कवि, इसी भक्ति योग का संबल लेकर प्रतिपाद्य विशय से तदाकार अपने अंतश्चक्षुओं के समक्ष उसका एक भव्य रूप अंकिल कर लेता था।

रामायण में कला के अर्थ में ''शिल्प'' शब्द का अनेकानेक बार प्रयोग हुआ है। शिल्प के अंतर्गत गीत, नृत्य, वाद्य, चित्र कर्म आदि ललित–कलाएं समाहित थी। कला का अनुशीलन मनोरंजन तथा व्यवसाय दोनों दृश्टियों से किया जाता था। व्यावसायिक कलाकार को ''शिल्पकार'' कहते थे। रामवेहारिकाणां शिल्पाना ज्ञाता थे – मनोरंजन के उपयोग में आने वाली संगीत, वाद्य, चित्रकारी आदि शिल्पों के जानकार थे। 2/1/28 वा० रा०।

रावण के पुश्पक–विमान में स्वर्ण खचित चित्रकारी की गई थी। कानन चित्रागंम 6/21/24। उसकी भूमि पर पर्वतमाला चित्रित की गयी थी। पर्वतों पर वष्क्षावली सुशोभित थी, वृक्ष पुश्पों वाले बनाये गए थे तथा पुश्पों को केसर और पंखुड़ियों से युक्त बनाया गया था। महीकृतापर्वतराजिपूर्णा शैलाःकृता वष्क्ष–वितानपूर्णाः। 05/7/9।।

राक्षसराज रावण के महल का वर्णन करते हुए चित्रशालाओं का वहुवचन में प्रयोग हुआ है। चित्रशालागृहणि च–5/6/36 इससे अनेक प्रकार की चित्रशालाओं का संकेत मिलता है, यथा राजमहलों में स्थिति चित्रशाला, निजी चित्रशाला तथा नगर के मध्य स्थित सार्वजानिक चित्रशाला। राजप्रसादों में चित्र–ग्रहों का अंकन एक परिपाटी के समान था। कैकेयी का राजप्रसाद चित्र–ग्रहों से सुशोभित था। लतागष्ह–श्चित्रग्रहैश्चम्यका शोकशोभितैः, 22/10/13 श्री राम के सुन्दर भवन का अग्रभाग सोने की देव–प्रतिमाओं से अलंकृत था। उसके बाहर फाटक में मणि और मूंगे जड़े हुए थे। कॉचनप्रतिमैकग्रं मणिविद्रयतोरणम। 20/115/32 स्वर्ण आदि की सुन्दर ढंग से वनी हुई भेड़ियों की मूर्तियों से वह व्याप्त था, शिल्पियों ने दीवारों पर बड़ी सुन्दर चित्रकारी की थी। सुकृतेहामृगाकीर्णमुत्कीर्ण भक्तिभिस्तथा 12/115/35

भित्ति चित्रण, पच्चीकारी, स्वर्ण प्रतिमाएं तथा विभिन्न प्रकार के अलंकरणों के वर्णन से

सम्पूर्ण रामायण भरी पड़ी है। यह तक कि जिन शिविकाओं में या पालकियों में शव ले जाए जाते वे भी अलंकृत होती यथा वाली का शव जिस शिविका में ले जाया गया वह पक्षियों, वृक्षों तथा अद्भुत पदातियों के चित्रों से आपूरित थी। दिव्यां भद्रसनयुवां शिविका स्यन्दनोपमाम। पक्षिकर्मभिरनितरां द्रुमकर्मविभूपिताम।।22।। आनिता चित्र–पतितीभीः सुनिविश्ठां समन्ततः। 4/115/22–23 । 12; रावण के शव को ले जाने वाली शिविका को विचित्र पताकाओं तथा फूलों से उरेहा गया था, जिससे वह विचित्र शोभा धारणा करती थी। पताकाभिश्चचित्राभिः सुमनोभिश्च चित्रिताम, 6/111/109 ।

अथचः हाथियों के मस्तक। गवाक्षिटाइवाभान्ति गजाः परमभक्तिभिः, 3/5/15। भी सुन्दर अलंकरणों से सज्जित किए जाते। ऐसी प्रथा तो आज भी है। रमणियों के मुख पर अलंकरण की प्रथा भी चलन में थी। सचक्रवाकानि सशैवलानि काशैदुकूलैरिव संवष्तानि। सपत्ररेखाणि सरोचनानि वधूमुखानीव नदीमुखानि, 41/330/55।। अर्थात नदियों के मुख नववधुओं के मुँह के समान शोभा पाते हैं। उनमें जो चक्रवाक हैं, वे गोरोचनव्दारा निर्मित तिलक के समान प्रतीत होते हैं, जो सेवार हैं वे वधू के मुखपर बनी हुई पत्रभंगी के समान जान पड़ते हैं तथा जो कास हैं, वे ही मानों श्वेत दुकूल बनकर नदिरूपिणी वधू के मुख को ढके हुए हैं।

अब कुछ उदाहरण विश्णुधर्मोत्तरपुराण से, जो भारतीय चित्रकला के लिए एक मानक ग्रन्थ है। इसके तष्तीय खण्ड में अध्याय 35 से लेकर अध्याय 43 तक ''चित्रसूतम्'' प्रकरण है जिसमें चित्र संबंधी अनवद्य परिचय दिखा गया है। सरल भाशा और रसवन्ती शैली में लिखा गया यह चित्रसूत्रम् छोटे–छोटे अनुश्टम् छंदों में चित्रगत गंभीर भावों से भरपूर है। संस्कृत साहित्य में ''रस'' ही एक ऐसा शब्द है जिसका पूर्ण विवेचन नहीं हो सका है।

चित्रसूत्रकार बड़े विनोदी थे, उन्होंने रसास्वादन के संबंध में लिखा है–

रेखां प्रशंसन्तयाचार्या वर्तनां च विचक्षणाः।

स्त्रियो भूशणमिच्छनित वर्णाढ्यमितरेजनाः।।।।।। चित्रसूत्रम

अर्थातः आचार्या रेखाओं की प्रशंसा करते हैं, वुद्धिमान लोग प्रवर्तन को तथा स्त्रियॉ आभूशणों की इच्छा रखती हैं और अन्य लोग रंग की इच्छा रखते हैं।

चित्रसूतम चित्रकला संबंधी सर्वांगपूर्ण शास्त्र है फिर भी चित्रसूत्रकार का कहना है कि चित्रशास्त्र इतना विस्तृत है कि सौ वर्शों तक लगातार वर्णन किया जाए तब भी वह पूरा नहीं हो सकता है –

अशक्यों विस्तराद्वक्तुं बहुवर्धशतेरपि।। 36।। चित्रसूतम, तृतीय खंड

पूर्वकाल में उर्वशी की सृश्टि करते हुए नारायण मुनि ने लोगों की हितकामना से चित्रसूत का निरूपण किया था। निकट आई हुई सुर–सुन्दरीयों को भुलावा देने के लिए महामुनि ने अतिसुंगंधित आम्ररस लेकर पष्थ्वी पर एक उत्तम स्त्री का चित्र बनाया। चित्र में वह स्त्री लावण्यवती, श्रेश्ठ अप्सरा दिखाई पड़ने लगी, जिसे देखकर वे सभी देव–स्त्रियाँ लज्जित हो गई।। 1–3– ।–22।।/ उर्वशी सृजतः पूर्वे चितसूतम नृपात्मज./। तब इस प्रकार अच्युत। कर्म से च्युत न होने वाले विश्वकर्मा को सौंप दिया एवं महामुनिः कृत्वा चित्रं लक्षणसंयुतम्।।4।। ग्राहयामास स तदा विश्वकर्माणमच्युतम्।।/।

नृत्य कला की भांति चित्रकला में भी तीनों लोक का अनुकरण किया जा सकता है चितवन,

भाव और अंग–प्रत्यंग– सब प्रकार से दोनों में साम्य है। कृकृकृ नष्त्य परम चित्र माना गया है। अर्थात नष्त्य और चित्र दोनों का विशय समान है।। यथा नष्त्ये तथा चित्रे त्रैलोक्यानुकृतिः स्मष्ता ।। 5 ।। दृश्टश्च तथा भाता अंगोपांवानि सर्वशः ।।कृकृ नष्तं चित्रं परं मतम् ।। 5–7 चित्रसूतम् ।।

चित्रसूत में चित्र चार प्रकार के कहे गए है –सत्य, वैणिक, नागर और मिश्र। सत्यं च वैणिकं चैव नागरं मिश्रमेव च।। चित्रं चलुर्विधं प्रोक्लतस्य वस्यामि लक्षणम।।, ।। ।। सत्य चित्र उसको कहते हैं जो कुछ लोक से मिलता–जुलता हो, सुकुमार हो, प्रमाण तथा सुंदर आधार से युक्त हो और लम्बे अंगो वाला हो।। 2 ।।। खतिकंचिलोकसादृश्यं चित्रं तत सत्य– मुच्यते।। दीर्घांगे सप्रमाणं च सुकुमारं सुभूमिकम। जो चित्र सुडौल एवं परिपूर्ण हो, न लम्बा हो न उत्कट आकृतिवाला हो और आधार एवं प्रमाण से युक्त हो, उसे वैणिक कहते है।। 3।। जिनके सभी अंग दृढ़ एवं पुश्ट हों और जो न गोला हो न उत्कश्ट, उसे नगर चित्र कहते हैं। स्वल्प मालाओं एवं आभूषणों से युक्त चित्र मिश्र कहलाता है।। 4 1/2 ।।। दृढ़ीपचितसर्वांग वतुलं नहयनुल्वणम्। चित्रं तं नागरं ज्ञेयं स्वल्पमाल्यविभूषणम्।। 4 ।। चित्रमिश्रं समाख्यातं समासान्मनुजोत्तम।।

चित्र की रेखाएं या लिखावट तीन प्रकार की कही गई हैं – पत्रवर्तना, आहेरिकवर्तना और विन्दुवर्तना। पत्र सदृश रेखाओं को पत्रवर्तना, अत्यंत सूक्ष्म रेखा को आहेरिकवर्तना और स्तम्भनयुक्त रेखा को विन्दुवर्तना कहते हैं।। 5–6 1/2 ।। तिस्रशनवर्तनाः प्रोक्ताः पत्राहैरिकविन्दुजाः।। 5 ।। पत्राकृतिभि रेखाभिः कथितात्र न वर्तना ।।अतीव कथिता सूक्ष्मा तथा हैरिकवर्तना ।। 6 ।। तथा च स्तम्भनायुक्ता कथितावेंदुवर्तना ।।

चित्र का दोश एवं गुण बताते हुए चित्र सूत्रकार का कथन है–

जिसके स्थान, प्रमाण और आधार ठीक हैं। अंगो में कोपलता, विगाव तथा सामंजस्य हो और पक्ष में वषद्धि हो, वह चित्र भूशित माना जाता है। / स्थान प्रमाण भूलंबो मधुरत्वं विभक्तता।। सादृश्यं पक्ष वषद्धिश्च गुणशिचत्रस्य कीर्तिताः ।। 9 ।।

जिसकी बिन्दु रेखा दुर्बल हों, अंग परस्पर सटे हों, अंडकोश, ओठ और नेत्र बड़े हों, सभी अंग एक से दिखाई दें और आकार मानवीय हो यह चित्र दूशित माना जाता है ।। 7–8 ।। / दौर्वल्यविन्दुरेखत्वमविभक्तत्वमेव च ।। 7 ।। वष्हदण्डौश्ठनेत्रत्व – मविरुध्दत्वमेव च ।। मानवाकारता चेति चित्रदोशाः प्रकीर्तिताः ।। 8 ।।

शोभनचित्र के संबंध में चित्रसूत्राकार कहता है –

कि जो चित्र अत्यन्त कोमल, सुस्पश्ट तथा सुन्दर वर्णा वाली रेखाओं से युक्त देश–विदेश के देशों से सुसज्जित और पूर्वोक्त प्रमाण की शोभाओं से सम्पन्न होता है, वह अतीव कुतूहल या आश्चर्य उत्पन्न करता है। फलतः ऐसा चित्र शोभन होता है ।। 15।।

अब कुछ उदाहरण लौकिक ग्रंथों : विस्तारमय से हम यहां कुछ उदाहरण देना चाहेंगे। इन ग्रंथों की लम्बी सूचि में नाटक, चम्पू, कथा, आख्यायिका, ऐतिहासिक काव्य आदि है जो चित्र रचना सम्बन्धी संदर्भों से भरे पड़े है।

चित्रशालाएँ एवं चित्रकारः

''यदि तुम्हारे साथ बिजली है तो उन भवनों में भी नाटकीली नारियां हैं, यदि तुम्हारे पास इंद्रधनुश है तो उन भवनों में भी रंग–बिरंगे चित्र लटके हुए हैं।''

''विधुतवन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः।। 1 ।।''

''सुन ! जब महारानी चित्रशाला में पहुँचकर चित्रशाला के आचार्या के हाथ से बनाए हुए गीले चित्रों को देख रही थी।

''श्रण ! चित्रशालां गतादेवी यदा प्रत्यग्रवर्ण रागांचित्रलेखामाचार्या स्थालोक– यन्ती तिश्टति।''

''वहां देव, दानव, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर और नागों से भूशित चित्रशालाएँ ऐसी प्रतीत होती है मानों दिन–रात होते उत्सवों में एकत्रित होती स्त्रियों को देखने के कुतूहल से देवताओं के विमानों की पंक्तियां आकाश से उतर आई हों।''

''सुरासुर–सिद्ध–गन्धर्व–विद्याधरोरपायासिताभिश्चिशालाभिरविरतोत्सव प्रभदावलोकन–कुतूहलादम्बरतलादवतीर्णभिर्दि व्यविमानपंक्तिभिरवालंकृता।।

''उसकी दीवारें तत्काल काढ़े गए मंगलकर चित्रों से देखने में सुन्दर लगती थी।''

''प्रत्यग्र–लिखित–मंगल्यालेख्योज्जवलभित्तिभाग–मनोहारिणि।''

''लक्ष्मण–जय हो, आर्य की जय हो। आर्य ! चित्रकार अर्जुन ने हमारे कथानुसार आपका जीवन–चरित्र इस चित्रभित्ति पर चित्रित किया है। आप उसे देखिये।''

''लक्ष्मणः जयतिजयत्यार्यः। आर्य, अर्जुनेन चित्रकेरणासमदुपविश्ट मार्गस्य–चरितमस्यां वीथ्यामभिलिखितम। तत पश्यत्वार्य।''

''सखि, यहां चित्रपट में तुमने किसे चित्रित किया है ?

सखि, इस मदन महोत्सव में कामदेव।

धन्य है तुम्हारी निपुणता। फिर भी यह चित्र कुछ सूना सा क्यों लग रहा है ! तो में भी चित्र बनाकर इसे रतियुक्त कर दूँ।''

अंत में निश्कर्श स्वरुप यह कह सकते है कि हम मैकाले की भूल–भुलैयों से निकलकर यदि अपने प्राचीन ग्रंथों का जिनमें महाकाव्य, पुराण और लौकिक साहित्य का स्थान सर्वोपरि है, अध्ययन करें तो पायेंगे कि उनमें कला–संबंधी इतना प्रचुर ज्ञान है कि विश्व कला–साहित्य भी उसकी तुलना में नगण्य है। यह बकवषत्ति या व्याजोक्ति नहीं, कटु सत्य है।

हमारी सांस्कृतिक और एतिहासिक परंपरा बहुत ही समष्द्ध और उदार रही है, हममें कौलीन्य–गर्व रहा है, आत्ममर्यादा को समस्त दुनियायी सुख–सुविधाओं से श्रेश्ठ समझा है और जीवन के किसी भी क्षेत्र में असुंदर को सेहन नहीं किया है। अरे ! ''जो जाति सुन्दर की रक्षा और सम्मान करना नहीं जानती वह विलासी भले ही हो ले पर कलात्मक विलास उसके भाग्य में बदा नहीं होता।''

सन्दर्भ सूचीः–

- कालिदास : मेघदूतम। उत्तरमेघ।
- कालिदास : मालविकाग्निमित्रम। प्रथमो अंकः। पृ० 264
- वाणभट्ट : कादम्बरी। उज्जयनीवर्णना–।। पृ० 154
- वाणभट्ट : कादम्बरी। गर्भवतीविलास वतीव –। 5। पृ० 21
- भवभूति : उत्तररामचरित। प्रथम अंक। पृ० 31
- श्री हर्शदेव : रत्नावली नाटिका। बिदतीयों अंक।, पृ० 410
- हर्शचरितम : प्रथम उच्छवास, पृ० 17–18
- हजारी प्रसाद द्विवेदी : प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० 2